आसोज शुक्ल २, रविवार, दिनांक - ३०-०९-१९६२
गाथा-६२ से ६६, ८८, ९२, ५३९, ५४०
प्रवचन-६

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित है। उसमें यहाँ सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। क्योंकि धर्म में पहले सम्यग्दर्शन बिना तप और संयम कुछ होता ही नहीं।

मुमुक्षु : क्रिया हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तप, संयम क्रिया मिथ्या होती है। समझ में आया? यह है इसमें, देखो! पृष्ठ ४७ में है। ४७-४७ है न इसमें? इसमें ही है, देखो! ८८ गाथा, ज्ञानसमुच्चयसार, ८८।

न्यान हीनो व्रतं जेन, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
कस्टं निरोह सेसानि, मिथ्या विषय रज्जितं॥८८॥

है? क्या कहते हैं? '**जेन न्यान हीनों' जिसने आत्मज्ञानमयी श्रुतज्ञान के बिना अनेक प्रकार व्रत तप क्रिया की वह केवल मात्र कष्ट को ही सहता है।** समझ में आया? क्या कहा? आत्मा की सम्यग्दृष्टि बिना, आत्मा राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर की क्रिया से रहित मेरा आत्मा शुद्ध चैतन्य, ऐसी अन्तर्दृष्टि सम्यग्दर्शन अथवा राग से भेदज्ञान किये बिना। है? यह जो क्रिया, व्रत और तप। है पण्डितजी? देखो, तारणस्वामी कहते हैं। व्रत और तप क्रिया '**निरोह कस्टं' 'निरोह कस्टं'** मात्र कष्ट है। है? '**निरोह'** नहीं कहते लोग? अकेला कष्ट। सेठी! आत्मा क्या चीज़ है, उसकी भूमिका का भान नहीं। किसमें स्थिर होना है और वह चीज़ क्या है, ऐसे अन्तर में सम्यग्ज्ञान भावश्रुत, भावश्रुत सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना, देखो! '**कस्टं निरोह सेसानि'** कष्ट मात्र सहन करने से भी '**मिथ्या विषय रज्जितं' उसका रंजायमानपना मिथ्या इन्द्रियों के विषयों में है।** अथवा उसके पुण्य के विषय में रंजायमान है। है? है या नहीं? यह ज्ञान बिना, ज्ञान बिना क्रिया है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो क्रिया करते-करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता क्रिया करते-करते। क्रिया साधन ही

नहीं। अब फिर आयेगा थोड़ा। समझ में आया? देखो। यह लिया है। कहाँ से लिया है? यह दूसरे में है वह तो। मूल लेना है न। पृष्ठ ३६६। छापा है उसमें है। पहले पढ़ा था तब उसमें से निकाला था। यहाँ भी सब जगह साधन-साधन कहा है। अन्तर स्वभाव साधन, हों! ३८३ है। देखो। गाथा है २, परन्तु फूलना है फूलना? क्या है? परमेष्ठी। तीसरी गाथा। फूलना है न। यह ममलपाहुड ममलपाहुड में। देखो, उसमें लिखा है।

मुमुक्षु : फूलना नम्बर क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : फूलना नम्बर है। यह पृष्ठ आया नहीं। नम्बर है ९७। ९७ नम्बर है। ९७ देखो। इसकी गाथा है, देखो! क्या आया? बहुत वर्ष पहले पढ़ा था न जब, तब लिखा हुआ है। देखो! इसमें १०वीं गाथा है १०वीं। चौथी गाथा लो चौथी।

उवन दिप्ति सुइ दिपियं,
दिपियं सुइ दिस्टि दिपिय ममलं च।
दिप्ति दिस्टि सुइ सब्दं,
सब्दं अवयास सुवन सम कर्नं ॥४॥

इन्हीं शब्दों के अनुसार समताभाव के साधनरूप परिणमन, वही साधन है। करण अर्थात् साधन है। यह करणशक्ति नहीं आयी थी अपने? करणशक्ति आयी थी न? आत्मा... यह क्रियाकाण्ड के साधन से आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता। यह पुण्यबन्ध होता है।

मुमुक्षु : करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना क्या? वह राग बीच में आता है। परन्तु करने का तो अन्दर ज्ञान स्वरूप शुद्ध चैतन्य का करण-साधन अन्दर आत्मा में पड़ा है। देखो! बड़ी चीज़ है। करण-करण शब्द पड़ा है न? बहुत बार करण आयेगा। यह तो बहुत वर्ष पहले वाँचा था न, तब लाल चिह्न किये हुए हैं। देखो। समझ में आया?

'**सब्दं अवयास सुवन सम कर्नं**' जो भगवान के शब्द हैं, तद्नुसार वाणी में ऐसा आया था कि अन्तर में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र जो वीतरागी स्वरूप का अन्तर साधन करण गुण पड़ा है, उस साधन से स्वभाव (प्राप्त) होता है। व्यवहार साधन से स्वभाव

(प्राप्त) नहीं होता। रतनलालजी! यह देखा ही नहीं, कभी वाँचा नहीं, लो! कभी भी नहीं देखो। यह बड़ी चीज़ है। निकली? बड़ी चीज़ है, देखो! सबमें करण बहुत आयेगा, हों! पश्चात् १०वीं गाथा में। **'सब्दं कर्न सुइ समयं' आत्मा ही मोक्ष का साधन, यही करण शब्द बताता है।** करण अर्थात् साधन बताता है। अपना शुद्धस्वरूप, वही साधन है। राग, पुण्य, विकल्प, निमित्त-बिमित्त कोई साधन नहीं। साधन का कथन दो प्रकार से चला है, परन्तु साधन एक ही प्रकार का है। समझ में आया? देखो, भजन में भी ऐसा लिया है। समझ में आया? १० वाँ।

पश्चात् १२वाँ। सबमें यह बात ली है। **'आयरनं उवन सब्द सुई कर्नं'** आचार्य उसे आचरण कहते हैं कि ज्ञान की अन्दर अन्तर शुद्धता में आचरण करना, वही साधन है। **यही करण शब्द से प्रयोजन है।** देखो! **यही करण...** करण अर्थात् कारण, साधन, उससे प्रयोजन है। बाकी शरीर की क्रिया, पुण्यादि की क्रिया वह कोई साधन-फाधन है नहीं। उसमें ऐसा भी कहा है कहीं। उत्साह का लिखा है कहीं। पुण्य में उत्साह है। पृष्ठ ९७। उसमें पृष्ठ है ९७। उसमें, हों! ममलपाहुड़ में पृष्ठ ९७ है। ममलपाहुड़ में हों! देखो, गाथा ली है न? कौनसी है? यह तो ज्ञानसमुच्चयसार में, हों! ज्ञानसमुच्चयसार में है, देखो पृष्ठ-९७। पहले देखा न। देखा, १२४ गाथा। भाई इसमें है। १२४।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा।
अनंतानुलोभ सद्भावं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२४॥

जिसके भीतर पुण्य की प्राप्ति के लिये लोभ भाव सदा रहता है, उसके अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है, इसलिए सम्यग्दृष्टि पुण्य का लोभ भी छोड़ देते हैं। शुभभाव आता है, परन्तु उसका उत्साह छोड़कर स्वभाव का साधन करते हैं। आता अवश्य है। राग आता है दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, परन्तु उसकी अन्दर दृष्टि छोड़कर अपने स्वभाव का साधन करता है। पुण्य का लोभ, व्यवहार का लोभ छोड़ देता है। है या नहीं उसमें? समझ में आया? तो यहाँ भी आया देखो यह करण। यह करण चलता है न अपने अभी तो। करण आया? कितनी गाथा आयी? १२। १२ गाथा में आया।

पश्चात् देखो १३वीं में। **'हययार कर्न सम समयं'** हितकारी समभाव सहित आत्मा का प्रकाश है। स्वात्मानुभव करना। है? १३वीं। पहले **'हययार कर्न सम समयं'**

हितकर अपना स्वरूप शुद्ध है, उसका साधन करना, वह हितकारी है। व्यवहार साधन आता है, वह परमार्थ से हितकारी नहीं। यह तो इसमें है भाई ममलपाहुड में। समझ में आया? पश्चात् १६वीं गाथा देखो। **'कमलं सुइ उवन साहियं कर्नं'** कमल समान भगवान आत्मा की अन्तर चैतन्यप्रकाश की ओर एकाग्रता **वही सिद्धपद का करण-साधन है।** है? यह सब लक्ष्य करके ध्यान करना, विचारना कि यह क्या कहते हैं? समझ में आया? उसमें तो बहुत जगह ऐसी बात है। उस समय (चिह्न किये हुए हैं)। उसमें भी अभी दूसरी है, देखो, १७। **'कर्न समय हिय उवनं' आत्मिक साधन भाव का होना अपने हित का उदय है।** शोभालालजी! यह पैसे का साधन खोजा, परन्तु यह कभी खोजा नहीं वहाँ। स्वामीजी क्या कहते हैं अन्दर देखो। कि भगवान ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञदेव कहते हैं—जिनोक्तं। **'कर्न समय हिय उवनं'** अपने शुद्ध चैतन्य की अन्तर में एकाग्रता शुद्ध स्वभाव का साधन करना, वही हितकर है, दूसरा कुछ हितकर नहीं।

१८ में। **'उवनं सुइ सुवन कर्न सुइ समयं।' आत्मा का उदय वही आत्मा का परिणमन, वही साधन।** शुद्ध आत्मा अपने में रागरहित परिणमन करता है, वही मोक्ष का साधन है। दूसरे साधन का उपचार से कथन है। कहो, समझ में आया? यह ११वीं गाथा में से बहुत लिया है। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।'** साधन-फाधन निश्चय का वही एक निश्चय साधन है। व्यवहार साधन उपचार से कहा जाता है। वास्तव में वह साधन नहीं है। कितनी गाथा हुई, १८?

२०। **'उवनं सुइ सब्द कर्न सम ममलं।' इस शब्द के अर्थ के अनुभव से शुद्ध समभाव प्रगट हो जाता है।** अपने अन्दर में शुद्ध समभाव पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अन्तर की वीतराग परिणति, वही अपना शुद्ध स्वभाव का साधन है। कहो, समझ में आया? ऐसे तो बहुत शब्द पड़े हैं। पश्चात् २२ में है। **'समयं सुव सुवन कर्म विंदानं।' आत्मा का आत्मा में परिणमन करना, वही अपना ज्ञान का साधन है।** वह ज्ञान का यह साधन है। राग और विकल्प, वह सब साधन है नहीं। कठिन तो बहुत लगे, हों! समझ में आया? यह तो वह करण याद आ गया। उस समय करण में सबमें चिह्न किया था न।

'आयरन कमल समय ध्रुव कर्नं।' २३। **अपने आत्मारूपी कमल में आचरण करना, वही ध्रुव आत्मा के विकास का साधन है।** सेठी! निश्चय की ऐसी बात है, जरा लोगों को ऐसा लगे कि अरे! यह व्यवहार उत्थापित हो जाता है। व्यवहार होता है। हो, परन्तु वह अपने स्वरूप के विकास का साधन होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो! कितना लिखा है, देखो! पश्चात् २४। **शुद्धात्मा में अनुभवशील होना, यही साधन है।** देखो, पाठ है न? **'कलनं सुई कमल साहि सुव कर्नं'** पाठ में आता है न भाई अपने। **'कलनं'** समयसार नाटक में कलश आता है। अभ्यास करने अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति सन्मुख अभ्यास **'कलनं' यही अनुभवशील होना ही साधन है। जिसके निर्वाणरूपी साध्य की सिद्धि की जाती है।**

२५। **यह प्रकाश ही आत्मारूपी कमल के विकास का साधन है।** है? अन्तिम शब्द है। **'उवनं सुइ कमल कर्न सुइ समयं'** पश्चात् २६। देखो, **'पय उवन कमल साहि सुइ कर्नं' अर्हंतपद का उदय है, वही साधनेयोग्य कमल समान आत्मा है। वही मोक्ष का साधन है।** शोभालालजी! यह विकल्प-बिकल्प साधन नहीं, ऐसा कहते हैं। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो सिद्धाणं जाप करना, वह सामायिक है और प्रौषध है और धर्म है, ऐसा नहीं है। कठिन बात है, हों! अन्तर आत्मा ज्ञान सन्मुख की शुद्ध परिणति का साधन करे, वही साधन अर्थात् कारण अपनी मोक्षदशा का है। बाकी सब साधन व्यवहार पुण्यबन्ध के हैं।

२७। यह भी है। **समभावरूप चारित्र का उदय, वही आत्मा का स्व चारित्र में परिणमन है।** देखो! **'चरनं सम उवन कर्न सुव समयं'** करण शब्द से परिणमन, करण शब्द से कारण, करण शब्द से साधन। अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप का साधन वही है। देखो! कितने दृष्टान्त हैं! २८, लो न। **'अलषं सुइ लषिय कर्न निर्वानं' जब अतीन्द्रिय आत्मा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है, तब ही वह साधन प्रगट होता है।** भगवान ज्ञानमूर्ति का स्वसंवेदनज्ञान से ज्ञान होना, विकल्प-राग से नहीं, वही आत्मा के मोक्ष का साधन होता है। कहो, समझ में आया? लो, यह करण की बात हुई। और पुण्य के उत्साह की बात हो गयी। हो गयी न?

और एक है इसमें। एक पृष्ठ १५७ है न। उसमें यह पहले कहा था। पृष्ठ १५७

है। उसमें एक ऐसी बात भजन में की है कि भगवान! '...' **भव्य जिन अर्हंत की भक्ति में मग्न होकर ऐसा कहता है, हे जिनेन्द्र! क्या हमारे साथ अपने मोक्षरूपी देश में न चलोगे ?** हमारा स्वभाव साधन सिद्ध समान हम करते हैं तो भगवान! हमारे साथ चलो। सिद्ध भगवान को अपने साथ लेता है। देखो! समझ में आया ? ... अपने देश में नहीं चलोगे ? अपना शुद्ध स्वरूप शुद्ध आनन्दघन, उस देश में नहीं रमोगे ? प्रभु! हमारे साथ चलो। हम भी हमारे स्वरूप के देश में जाते हैं। समझ में आया ? पश्चात् है न ? यह नाम आया ... हे जिनेन्द्र भगवान! क्या हमारे साथ अपने निज वेश में नहीं चलोगे ? निज वेश में। अपना निर्विकल्प वेश है। वीतरागी परिणति से प्रभु! हमारा वेश साथ में लेकर चलो वीतराग परमात्मा। ऐसी भगवान से प्रार्थना करता है। वास्तव में तो स्वयं से प्रार्थना करता है, ऐसा बहुत है उसमें। भजन-भजन किया है, देखो! फिर है न ?

.... हे जिनेन्द्र भगवान! क्या आप मेरे साथ अपनी शैय्या पर नहीं चलोगे ? हम हमारे स्वरूप में शैय्या करके सोते हैं, प्रभु! हमारे साथ चलो। समझ में आया ? हमारी शैय्या शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है। आप उस शैय्या में सोते हो तो हम भी हमारी शैय्या में आते हैं, आप साथ में चलो, हमको आपका साथ है। सथवारो कहते हैं न ? साथ-साथ। हमारे काठियावाड़ में सथवारो कहते हैं। परन्तु साथ किसका ? हम हमारे शुद्ध स्वरूप में रमण करते हैं, प्रभु! हम सिद्धपद में जाने की तैयारी करते हैं तो तुम भी हमारे साथ चलो। हमारे साथ चलो अर्थात् हमारे साथ रहो, ऐसा। हमारे साथ रहो। तुम्हारा हमको साथ है, तुम्हारा हमको साथ है। हमको दूसरे का किसी का साथ नहीं है। समझ में आया ? भजन में भी वह गाया है। पूरा भजन ही ऐसा है।

बाद में भी लेंगे। **हे जिनेन्द्र! क्या आप मेरे साथ नहीं चलोगे ? क्या आप मुझे मुक्ति पहुँचने में मदद नहीं देंगे ?** ऐसा कहते हैं न ? .... हमारे साथ चलकर भगवान! वह प्रवचनसार चला है न ? प्रवचनसार। पहले दीक्षा का अधिकार चला है प्रवचनसार में। कुन्दकुन्दाचार्य। तो वहाँ दीक्षा लेते हैं तो सब पंच परमेष्ठी को, विद्यमान तीर्थंकर को सबको बुलाते हैं। प्रभु! हमारे साथ रहो न! हमारा स्वयंवर दीक्षा होती है। हमारी दीक्षा होती है। स्वयंवर मण्डप में हमारी दीक्षा (होती है)। यह विवाह करने जाते हैं न विवाह में ?

एक बार दृष्टान्त दिया था। विवाह करने जाते हैं। उस कन्या के पिता के पास कम हो कि हमें दस हजार देना है। तो भगवानदासजी सेठिया जैसों को साथ ले जाये। वह गरीब व्यक्ति बेचारे कौन जाने क्या होगा? भाई भगवानदास! चलो हमारे साथ। चलो भाई! वह कन्या का समय हो पाणिग्रहण का। तो उसने रोक दिया। सब सेठिया बैठे हैं। देरी क्यों लगी? कन्या के पिता कहते हैं कि दस हजार रुपये माँगते हैं। अरे! परन्तु अभी दस हजार! कहाँ से लावे? गरीब व्यक्ति है। अन्दर गये, कहा क्या है? गले में एक हार था वह दे दिया। कन्या एक मिनिट नहीं रुकेगी। हम साथ में हैं। समझ में आया? उसके पास नहीं परन्तु कन्या का विवाह आठ बजे बराबर होगा। सेठी!

इसी प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! हमारी मोक्षरूपी लक्ष्मी का स्वयंवर मण्डप रचा है। तो हम आपको बुलाते हैं, प्रभु! हमारे साथ रहना, हों! और हमारी मोक्षरूपी लक्ष्मीरूपी कभी वापस फिरे नहीं। समझ में आया? भगवान! हमारे विवाह में आपको बुलाते हैं। तो बड़ों को बुलाते हैं तो बड़ों को बुलावे तो उसकी कन्या वापस फिरती नहीं। तो आप सिद्ध परमात्मा वर्तमान विद्यमान तीर्थंकर, अनन्त भूतकाल में हुए, भविष्य में होंगे सब मानो हमारे पास न हों। ऐसे तीर्थंकर को बुलाकर साधन करते हैं, हे भगवान! हमारे साथ रहो, साथ रहो। और तुम साथ हो और हमारी मोक्षलक्ष्मी फिरे? तीन काल में फिरे नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। उसमें बहुत बातें हैं। कहो, यह तो दो का उत्तर दिया।

क्या चलता है अपने? ६१ गाथा हो गयी। ६२वीं चलती है, देखो!

लोकितं सुध तत्त्वं च, सुद्ध ध्यान समागमं।
विस्व लोक तिअर्थं च, आत्मनं परमात्मनं॥६२॥

क्या कहते हैं? **चौदह पूर्वों में...** यह चौदह पूर्व की बात चलती है। ऊपर में चौदह पूर्व (आ गये)। तो चौदह पूर्व में बात क्या चली? चौदह पूर्व में सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में आया क्या? तो कहते हैं कि **चौदह पूर्वों में शुद्ध तत्त्वों को दिखाया गया है।** देखो! उसमें तो आत्मा शुद्ध, पदार्थ शुद्ध अपना स्वभाव निर्विकल्प वीतराग, वही बताया है। रागवाला आत्मा है, कर्मवाला आत्मा है, ऐसा अशुद्ध तत्त्वों का कथन नहीं

किया गया है। शुद्ध तत्त्व का कथन है, यह चौदह पूर्व का सार है। चौदह पूर्व में लोकबिन्दु चौदहवाँ पूर्व है। लोकबिन्दु। लोकबिन्दुसार ऐसा चौदहवाँ पूर्व में है। तो उसमें क्या कहा? यहाँ तो पहले से लेते हैं। अस्ति-नास्ति से लेंगे। चौदहवें पूर्व में अपना भगवान पवित्र अखण्डानन्द शुद्ध है, ऐसा **दिखाया गया है।** '**लोकितं**' है न? '**लोकितं**' अर्थात् **दिखाया गया है।**

'**सुद्ध ध्यान समागमं**' **और शुद्धध्यान की प्राप्ति का उपाय बताया गया है।** क्या कहा? दो बात—एक शुद्ध आत्मा बताया गया है चौदह पूर्व में और उसका मोक्ष का साधन शुद्ध उपाय बताया गया है। साधन और साध्य दोनों उसमें बताया है। साधन भी शुद्ध, साध्य भी शुद्ध। ऐसा चौदह पूर्व के अन्दर सार बताया है। मुख्य ऊपर कहा है। है न? '**सुद्ध ध्यान समागमं**' एकाग्रता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या है? वह तो सम्यक् शुद्ध चैतन्यस्वभाव में एकाग्रता है। राग और पुण्य के विकल्प की एकाग्रता छोड़कर सहजानन्द प्रभु अपना परमात्मा जिनेन्द्र प्रभु अपना देव, उसमें अन्तर्मुख होकर एकाग्रता होना, वही मोक्ष का साधन चौदह पूर्व में बताया है। चारों अनुयोग में यह सार कहा है। कहो, समझ में आया?

'**विस्व लोक**' **सर्व लोक के स्वरूप को...** '**विस्व**' अर्थात् समस्त। '**विस्व**' अर्थात् समस्त। **सर्व लोक के स्वरूप को...** इस आत्मा को, शुद्ध आत्मा के उपाय को, सर्व लोक को और तीन पदार्थ को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, हों! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धर्म को और **आत्मा तथा परमात्मा को बताया गया है।** लो! इतनी बात की। चौदह पूर्व में से सार निकालकर यह बताया है। समझ में आया? ६२वीं गाथा है न! यह तो पहले से चौदह पूर्व चला आता है न! ६०वीं गाथा से चला आता है न! '**पूर्वं पूर्व परं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं सास्वतं।**' वहाँ से चला आता है। प्राचीन काल से सर्वज्ञों ने चौदह पूर्व का कथन किया, उसमें सार यह आया है। तो यह सार उसे समझना चाहिए। यह तो समुच्चयसार है न। ज्ञानसमुच्चयसार। ज्ञान का पुंज आत्मा, उसके समूह का सार क्या? कि यह चौदह पूर्व में ऐसा बताया कि तू चैतन्य अखण्ड आनन्द पूर्ण है और उसका शुद्ध साधन भी करो, यह बताया है। समझ में आया? ऐई! सेठी! भारी कठिन इसमें जगत को। उसे ऐसा लगता है कि यह व्यवहार तो इसमें कहते नहीं, परन्तु

यह व्यवहार आ जाता है, उसका ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? और यह तो विकल्परूपी व्यवहार। यह सुनते नहीं? उसमें विकल्प नहीं आता? कहते हैं कि उसमें विकल्प नहीं आता? यह लिखते समय भी विकल्प तो है ही। परन्तु साधन यह नहीं है। अन्तर जो चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है भगवान पूर्णानन्द, उसमें लीन होना, वह उसका साधन है।

६३ (गाथा)। देखो, इसमें कहते हैं। अस्ति-नास्ति पूर्व है न पहला? चौदह पूर्व में अस्ति-नास्ति पूर्व है। चौदह पूर्व में।

अस्ति अस्तिं च सुद्धं च, आत्मनं सुधात्मनं।
परमात्मा परमं सुद्धं, अप्पा परमप्प समं बुधैः ॥६३॥

आत्मा और परमात्मा का शुद्ध स्वाभाविक अस्तित्व बना रहता है... कहते हैं कि शुद्ध परमात्मा भी सदा ही ऐसा ही रहता है और तेरा अनन्तगुण का पिण्ड स्वभाव भी ऐसा का ऐसा बना रहा है। अनादि से ऐसा का ऐसा बना रहा है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। पर्याय में जो हीनाधिकता है, वह दूसरी बात। उसका स्वभाव जो है द्रव्य और अनन्त गुण का पिण्ड, आत्मा और परमात्मा सबका गुणरूप स्वभाव तो एकरूप बना रहा है। समझ में आया? क्या आया? क्या एकरूप बना हुआ है? अपने गुण-गुण। अपना '**आत्मनं सुधात्मनं सुद्ध अस्तिं च अस्ति**' दोनों का शुद्ध-शुद्ध वीतराग विज्ञानघन ध्रुव ऐसा का ऐसा अनादि से विराजमान है। और परमात्मा हुए, उनकी पर्याय भी प्रगट हो गयी। बाकी वह भी अस्तित्व अनादि से है और तेरा गुणरूप शुद्धस्वभाव अस्ति है, ऐसा अस्ति-नास्ति पूर्व में बताया गया है। उस अस्ति का यह स्वरूप कहा है, ऐसा कहते हैं। छह द्रव्य अस्ति है, वह तो ठीक है। नौ तत्त्व है, परन्तु तेरा वास्तविक अस्तित्व तो यह बताया है चौदह पूर्व में भगवान की ध्वनि में। अरे भगवान! एक समय की पर्याय अल्प और राग और निमित्त कर्म का लक्ष्य छोड़ दे। तेरा स्वरूप ऐसा का ऐसा भगवान जिनेन्द्ररूप पड़ा है। जिनेन्द्ररूप वीतराग विज्ञानघन ऐसा का ऐसा अनादि से बना हुआ है। कभी हीन हुआ नहीं, कभी अधिक हुआ नहीं। वस्तु में क्या है? वस्तु तो ऐसी की ऐसी पड़ी है। पर्याय में दृष्टि में अन्तर है तो हीनाधिक भासित होती है। समझ

में आया ? समझ में आया ? पण्डितजी ! यह वापस वहाँ समझेंगे नहीं, हों ! वहाँ बोलेंगे यह, रिकॉर्डिंग बोलेगी तो कहेंगे, यह क्या कहते हैं ?

आत्मा-परमात्मा के समान निश्चय से है बुद्धिमानों ने ऐसा कहा है। बुद्धिमानो कहने से सर्वज्ञ। सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा कि तेरा द्रव्य ऐसा का ऐसा पड़ा है। तू नजर कर अन्दर में। तू श्रद्धा कर अन्तर में। वस्तु तो ऐसी की ऐसी विराजमान है। विराजमान सदा सच्चिदानन्द परमात्मा तेरा ऐसा का ऐसा है। कहो, समझ में आया ? यह ६३ हुई। ६४ (गाथा)। अब परमात्मा की बात करते हैं, देखो।

नास्ति धाति कर्मस्य, नास्ति सल्यं च रागयं।
दोषं नास्ति मलं मुक्तं, नास्ति कुन्यान दर्सनं॥६४॥

पूर्ण **परमात्मा के चार घातियाकर्म नहीं हैं।** अरिहन्त भगवान जो हुए, उन्हें चार घाति नहीं। **'सल्यं च नास्ति' तीन शल्य नहीं हैं।** सर्वज्ञ परमात्मा को माया, मिथ्या, निदान शल्य नहीं। मैं भी ऐसा हूँ, ऐसा कहते हैं मूल तो। वह तो पर्याय में प्रगट हुआ। मेरा स्वभाव भी घातिकर्म रहित, शल्यरहित और राग-द्वेष से रहित है। भगवान को राग-इच्छा है नहीं, मेरा स्वभाव भी ऐसा है। **'मलं मुक्तं' सर्व मल से रहित है।** अरिहन्त को अठारह दोष नहीं। अठारह दोष नहीं। क्या-क्या दोष नहीं ? नीचे लिखा है, देखो।

इन भगवान अरिहन्त को **क्षुधा...** नहीं होती। सर्वज्ञदेव परमात्मा हों, उन्हें क्षुधा नहीं, **तृषा,...** नहीं, **जरा,...** नहीं, **मरण,...** नहीं, **जन्म...** नहीं, **रोग...** नहीं। तीर्थंकर को रोग नहीं होता। यह दूसरे सम्प्रदाय में कहते हैं न छह महीने तक रोग रहा। कैसा कहलाये ? पेचिस, पेचिस। छह महीने रहा। भगवान को (रोग) नहीं होता। वे तो पूर्ण पुण्य के पवित्रता का पुतला शरीर है। अन्तर पवित्रता से पूर्ण और यहाँ पुण्य का पुतला शरीर है। तो कहते हैं कि रोग नहीं **भय,...** नहीं, **गर्व,...** नहीं, **राग, ...** नहीं, **द्वेष,...** नहीं। **मोह,...** नहीं, **चिन्ता, खेद, स्वेद...** पसीना नहीं। **निद्रा, आश्चर्य, मद, अरति— ऐसे अठारह दोष...** से रहित हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा का स्वभाव भी अठारह दोष से रहित है। समझ में आया ? आत्मा जैसे परमात्मा और परमात्मा जैसा आत्मा। जीव, वह जिनवर और जिनवर, वह जीव। यह परमात्मप्रकाश में कहा है। परमात्मप्रकाश है

न ? योगीन्द्रदेव रचित। जीव वह जिनवर और जिनवर वह जीव, उसमें किंचित् अन्तर नहीं है। भगवान आत्मा। यह पर्याय में अन्तर है, वह तो आंशिक वर्तमान दृष्टि अस्थिरता के कारण से। वस्तु में अन्तर नहीं। जैसे जिन और ऐसे जिनवर, जैसे जिनवर वैसा जीव।

भगवान को जैसे केवलज्ञान अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए तो अपने चैतन्य की बेल ऐसी है कि उसमें से अनन्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त करके (अनन्त चतुष्टय प्रगट हों), ऐसी अपनी चैतन्य वेलडी है। वेलडी समझते हो ? बेल-बेल होती है न ? बेल। बेल नहीं होती। यह बेल नहीं कहते वनस्पति को ? लता। काशीफल नहीं होते ? काशीफल होता है न ? इतना-इतना काशीफल होता है। तो उसकी बेल होती है। छिलका। छिलका तो पतला होता है परन्तु उसमें से इतने अधमण-अधमण काशीफल (होते हैं)... क्या कहते हैं तुम्हारे ? इतने बड़े-बड़े। बड़े होते हैं न। इतने इतने, वह बस। तो उसका वृक्ष आम के वृक्ष जैसा नहीं। आम जैसा वृक्ष नहीं। वृक्ष तो पतला है। फल ऐसे पकते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा इतने शरीर में भिन्न रहा है, परन्तु उसमें से केवलज्ञान का काशीफल पके, ऐसी आत्मा की सामर्थ्य है। समझ में आया ? यह केवलज्ञान की बेलडी है। बेल-बेल-लता। भगवान केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द की लता आत्मा है, उसमें से अनन्त ज्ञान आदि सिद्धपद पकता है। कहो, समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान को राग-द्वेष नहीं। **सर्व मल से रहित है।** और **न मिथ्याज्ञान है न मिथ्या मार्ग का उपदेश है।** देखो, **'कुन्यान दर्सनं नास्ति'** नहीं कुज्ञान, नहीं कुदर्शन और मिथ्या मार्ग का उपदेश भगवान के मुख में से निकलता नहीं। अज्ञानी मिथ्या बड़ा परमेश्वर नाम धरावे, देव नाम धरावे, परन्तु उल्टा उपदेश करे। तत्त्व क्या है, सत्य की समझण नहीं तो उसे अरिहन्त परमात्मा नहीं कहा जाता। समझ में आया ? एक जगह यह कल बात हुई थी न ? जीवत्व नहीं ? जीवत्व की बात हुई थी न ? क्या है ? मुर्दे समान है। किसी में है ऐसा। श्रावकाचार में ? कहीं है अवश्य। यह जीव तो मृतकवत्... रात्रि में चली थी न। पृष्ठ २१९ में है। उसमें तो सब पाठ है न। २१९ है। २१६ गाथा है। क्या कहते हैं ? श्रावकाचार—२१६।

संमिक्तं जस्य न पस्यंते, असार्ध व्रत संजमं।
ते नरा मिथ्या भावेन, जीवितोपि मृतं भवेत्॥२१६॥

यह आता है न? अष्टपाहुड़ में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न! चलता मुर्दा। चलता मुर्दा समझे न? मृतक कलेवर। आत्मा चैतन्य भावप्राण जीवत्वशक्ति। उस जीवत्वशक्ति में ऐसा आया। अपना स्वरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्राण से जीवन है। ऐसा जीवन नहीं, वह जीवत्व नहीं और जीवत्व नहीं, वह जीव नहीं। समझ में आया? सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान में अपने चैतन्य भावप्राण ऐसे श्रद्धा-ज्ञान नहीं और अकेले राग पुण्य को अपना आत्मा मानता है, तो कहते हैं कि **जिससे सम्यग्दर्शन का साधन नहीं हो सकता है।** .... सम्यग्दर्शन साधता नहीं, सम्यग्ज्ञान करता नहीं। **उससे व्रत, संयम का पलना असाध्य है।** यह व्रत और तप और संयम कर नहीं सकता। सम्यग्दर्शन बिना व्रत-तप कैसा? दुर्गादासजी!

मुमुक्षु : सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सत्य है? तो क्या मुंडाते थे सब? एकदम ले लो पंच महाव्रत और ले लो साधु। साधु होनेवाले थे। समझ में आया?

'असार्धं' असाध्य रोग नहीं होता? असाध्य रोग नहीं होता? कोई कहे भाई असाध्य है। अब कोई उपाय चलेगा नहीं। असाध्य... असाध्य... असाध्य... मर जायेगा। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना व्रत-तप सब मुर्दे हैं। असाध्य है, वह साधन कर सकते नहीं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान क्या चीज़ है, उसकी कीमत, महिमा नहीं। वह किसके आश्रय से प्रगट होता है, इसकी खबर भी नहीं, तो कहते हैं कि तेरे व्रत, संयम और तप, वह सब असाध्य है, मर गये हैं, उसमें कुछ है नहीं। **'ते नरा मिथ्या भावेन' वह मानो मिथ्यात्व की भावनासहित होने से। 'जीवितोपि' जीते हुए मृतक के समान हैं।** देखो, यह अपने कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में लिया है। बहुत उसमें से निकालकर अपनी भाषा में, सादी भाषा में बनाया है। समझ में आया? कोई घर की बात नहीं। देखो, फिर २१८ आयी २१८।

संमिक्त सहित नरयम्मि, संमिक्त हीनो न चक्रियं।
संमिक्तं मुक्ति मार्गस्य, हीन संमिक्त निगोदयं॥२१८॥

यह आता है न भाई! उसमें योगसार में। समकित सहित नरक में जाये तो अच्छा है। योगसार है एक योगीन्द्रदेव का। योगीन्द्रदेव न? योगसार। सम्यक् आत्मा के

भानसहित कदाचित् नरक में जाना पड़े तो भी अच्छा है, परन्तु मिथ्या श्रद्धा से स्वर्ग में जाना, वह बुरा है। समझ में आया? देखो, २१८ है। क्या कहते हैं? **सम्यग्दर्शनसहित नरक में रहना अच्छा है। 'संमिक्त सहित नरयम्मि'** श्रेणिक राजा नरक में हैं तो क्या हुआ? वह तो आत्मज्ञानी धर्मात्मा है। बाहर निकलकर तीर्थंकर होंगे आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। चौबीस तीर्थंकर में पहले तीर्थंकर होंगे। व्रत नहीं थे, संयम नहीं था, त्याग नहीं था, सम्यक् क्षायिकदर्शन था तो नरक में भी कहते हैं कि क्षायिक समकिती है, वह अच्छा है। सम्यग्दर्शन से शून्य '**संमिक्त हीनो न चक्रियं**' है न? **सम्यग्दर्शन से शून्य, उसको कोई भी क्रिया यथार्थ नहीं है।** कोई भी क्रिया उसके संयम, व्रत, तप, यात्रा, भक्ति, पूजा, सब बिना एक के शून्य है। उसमें कुछ लाभ नहीं। कितना लिखा है, देखो, पण्डितजी! अभी तक तो चला या नहीं? उल्हाने के योग्य तो है या नहीं? दोनों साथ में बैठे हैं, पण्डित और सेठ। .... ओहो! सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग... आया न। उसकी कोई क्रिया यथार्थ नहीं है।

'**संमिक्तं मुक्ति मार्गस्य**' यह सम्यग्दर्शन... लो, यहाँ तो भाई सम्यग्दर्शन को मुक्ति का मार्ग कहा। एक सम्यग्दर्शन, वह मुक्ति का मार्ग है। देखो! और '**हीन संमिक्त निगोदयं**' और सम्यग्दर्शनरहित मार्ग निगोद में जाने का है। '**निगोदयं**' लिखा है? २१८। बहुत बात चली है उसमें। देखो, २१९।

संमिक्त संजुत्त पात्रस्य, ते उत्तमं सदा बुधै।
हीन संमिक्त कुलीनस्य, अकुली अपात्र उच्यते॥२१९॥

सम्यग्दर्शन से जो भी पात्र हो,... चाहे हीन भी हो, चाण्डाल भी हो। **तो भी पण्डितों ने सदा उत्तम कहा है।** देखो, '**बुधै सदा उत्तमं**' यह पण्डित। शोभालालजी! सवेरे बात चलती थी न? पण्डित, सम्यग्दृष्टि पण्डित है। मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग, नौ पूर्व पढ़नेवाला भी अपण्डित है। देखो!

मुमुक्षु : मूर्ख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख है, ऐसा कहा है। सुन तो सही, भगवान! तेरी वस्तु परमानन्द शुद्ध पूरा द्रव्य पड़ा है अनादि-अनन्त एकाकार स्वरूप। उसकी तो तू प्रतीत करता नहीं,

वर्तमान राग, पुण्य-पाप का उत्साह करके पड़ा है। उससे तुझे आत्मा का लाभ जरा भी नहीं है। कहते हैं कि उसे हम पण्डित नहीं कहते, मूर्ख कहते हैं। **सम्यग्दर्शन कोई भी पात्र चाहे ... हों..** और '**बुधै सदा उत्तमं**' सर्वज्ञ भगवान ने उसे उत्तम कहा है। '**संमिक्त हीन कुलीनस्य' उत्तम कुलवाला है परन्तु सम्यग्दर्शनरहित है।** है ? '**कुलीनस्य**' कुलीन हो, उच्च गोत्र में उपजा हो (परन्तु) सम्यग्दर्शनरहित है (तो उसे) '**अकुली अपात्र उच्यते' नीच कुली नीचपात्र कहा जाता है।** सम्यक् आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान का पहले प्रयत्न करना चाहिए, वह चीज़ क्या है, उसे सुनकर ज्ञान करके प्रयत्न करना चाहिए। उसका तो ठिकाना नहीं। करो ऐसे पहले, करो व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो और यह ले लो। **नीच कुली नीचपात्र कहा जाता है।** कहो, समझ में आया ? फिर जरा २२० देखो। वहाँ तो और...

तिअर्थं संमिक्तं सार्धं, तीर्थंकर नाम सुद्धये।
कर्म षिपति त्रिविधं च, मुक्ति पंथ सिधं धुवं॥२२०॥

जो जीव सम्यग्दर्शनसहित है। साधन है न ? '**तिअर्थं संमिक्तं सार्धं' वही तीर्थंकर नामकर्म को बाँधकर तीर्थंकर जन्म लेता है।** सम्यग्दृष्टि। समझ में आया ? **वह जन्म आत्मा की शुद्धि के लिये होता है।** भगवान का जन्म जब तीर्थंकर हुए तो शुद्धि के लिये होता है। **वहाँ तीन प्रकार के कर्मों का क्षय कर डालता है।** सम्यग्दर्शन से तीर्थंकरपना बँधा, वह विकल्प आया इसलिए बँधा, हों ! सम्यग्दर्शन से बँधता नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका में जब ऐसा विकल्प षोड्शकारण, आती है न षोड्शकारण भावना ? वह तो तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। देखो ! '**तीर्थंकर नाम सुद्धये कर्म षिपति**' शुद्ध का अर्थ इतना शुद्धि में निमित्त है न, तो कहने में आया है।

कहते हैं कि **आत्मा की शुद्धि के लिये होता है।** यह नाम, यह भव। वहाँ '**त्रिविधं कर्म षिपति**' द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तीनों का क्षय कर डालता है। सम्यग्दर्शन में जब तीर्थंकरगोत्र बँधा तो जब अवतार हुआ तो वह शुद्धि के लिये अवतार है। और उस शुद्धि के अवतार में द्रव्यकर्म में आठ कर्म, नोकर्म में शरीर, भावकर्म में राग-द्वेष—तीनों का नाश कर डालता है। कहो, समझ में आया ? पश्चात् भी लिखा है, देखो ! २२१ (गाथा)।

संमिक्तं जसय चिंतंते, बारंबारेन सार्धयं।
दोषं तस्य विनस्यंति, सिंघ मतंग जूथयं॥२२१॥

जो कोई सम्यग्दर्शन को यथार्थरूप से बारम्बार चिन्तवन करते हैं, उसको दोष नहीं देते हैं। जैसे हस्ति के झुण्ड सिंह को नहीं देखते हैं। हस्ति हजारों इकट्ठे हों तो सिंह आया हो तो भी उससे डरते नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की बारम्बार भावना, रचना और रमणता की, वह कोई भी दोष उसके पास आ सकते ही नहीं। उसमें तो कहा है न? सम्यक्पुराण कहा है न? परमार्थपुराण। समकित है, वह फौजदार है, समकित है, वह फौजदार है। फौजदार समझते हो? पुलिस। ... गाँव का फौजदार, पुलिस का अधिकारी। तो किसी चोर को आने नहीं देता। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन किसी दोष को, राग को अपने में मिलाता नहीं। समकित अपने स्वभाव का फौजदार की भाँति रक्षण करता है। राग, विकल्प, शरीरादि मेरे हैं, उनसे रक्षण करता हे कि वे मेरे नहीं। मैं तो त्रिकाल शुद्ध अखण्डानन्द हूँ। इस प्रकार सम्यक् फौजदार अपने स्वरूप की रक्षा करता है। ६३ हुई। ६३ हुई न? कहाँ? इसमें? ६४ हुई। अब ६५ (गाथा)।

प्रन्यान पूर्व सुद्धं च, परम न्यान समागमं।
परमात्मा परमं सुधं, सुद्ध ध्यान समं बुधैः॥६५॥

यह भावना का ग्रन्थ है न, तो बारम्बार ऐसा आता है। **परमात्मा के भावों में अपूर्व अर्थात् उत्तम व शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है...** देखो! **'पूर्व सुद्धं च प्रन्यान'** प्रज्ञा उसे कहते हैं कि पर से भिन्न करने की सामर्थ्य, अपने में परमात्मस्वरूप प्रगट करने की ताकत। **शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है... 'परम न्यान समागमं' इसी से उत्कृष्ट केवलज्ञान का प्रकाश हुआ है।** भेदज्ञान से केवलज्ञान होता है। राग और विकल्प से भिन्न आत्मा को साधते-साधते केवलज्ञान होता है। कभी राग और पुण्य से और शरीर से केवलज्ञान नहीं होता। समागम है न? परम ज्ञान का समागम तब होता है।

'परमात्मा परमं सुधं' परमात्मा परम शुद्ध है। अत्यन्त निर्मलानन्द प्रभु अपना स्वभाव और पूर्ण दशा परमात्मा **शुद्ध ध्यान के समान है। अर्थात् शुद्ध आत्मिक ध्यानमय है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।** भगवान ने त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अपना शुद्ध

स्वभाव है, उसे दिखलाया है। उसमें तो दूसरी बहुत बातें हैं। क्या है देखो! एक स्वाध्याय की बात की है २९४ पृष्ठ पर। इसमें, हों! २९४। स्वाध्याय किसे कहते हैं? यह स्वाध्याय-स्वाध्याय कहते हैं न? स्वाध्यायमन्दिर-स्वाध्यायमन्दिर। तो कहते हैं, स्वाध्याय किसे कहते हैं? २९४ न? स्वाध्याय, देखो। ५३९, ५३९। यह श्रावक स्वाध्याय करता है न? स्वाध्याय की व्याख्या करते हैं। श्रावक के षट्कर्म हैं या नहीं? समझ में आया?

सुधं सुध सरुवं, सुधं झायंति सुधमप्पानं।
मिच्छा कुन्यान विरयं, सुध सहावं च सुध ज्ञानत्थं ॥५३९॥

स्वाध्याय तप के धारी कर्ममलरहित व रागादिरहित शुद्ध तत्त्वस्वरूप को ध्याते हैं। अपने तत्त्व को ध्याना, वह स्व-अध्याय=स्वाध्याय। स्व भगवान शुद्ध आत्मा का ध्यान करना, वह स्वाध्याय है। यह साधक की स्वाध्याय कहाँ गयी? वह तो विकल्प आता है तो स्वाध्याय उसमें कहते हैं। वास्तव में स्वाध्याय मन्दिर आत्मा है। समझ में आया? बाहर में स्वाध्याय मन्दिर है ही नहीं। रतिभाई! कैसे होगा? देखो! **कर्ममलरहित व रागादिरहित शुद्ध तत्त्वस्वरूप को ध्याते हैं।** ध्याते हैं। स्वाध्याय है न? स्व-अध्याय ध्यान।

और '**सुधं सुधमप्पानं झायंति' व परम शुद्ध आत्मा को ध्याते हैं। 'मिच्छा कुन्यान विरयं' मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान से विरक्त होकर...** मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान, राग से विरक्त होकर स्वरूप के अन्दर, वह अन्दर में स्वरूप का ध्यान करता है। यह **शुद्ध ध्यान में तिष्ठते हुए शुद्ध आत्म स्वभाव को पाते हैं।** उसे स्वाध्याय कहते हैं। यह हमेशा रिवाज है न कि श्रावक के षट्कर्म में स्वाध्याय करो, पश्चात् यहाँ कोई आता है न। मन्दिर में दर्शन करे, फिर ... दस मिनिट वाँच ले। स्वाध्याय हो गयी। संकल्प किया। धर्मचन्दजी! ऐसा चलता है या नहीं तुम्हारे? एक पन्ना फिरावे बस। एक पन्ना फिरावे। स्वाध्याय हो गयी। षट्कर्म में देवदर्शन हो गये, गुरु सेवा हो गयी। जो कोई मिले उस साधु को आहारदान दिया। यह स्वाध्याय हो गयी। संयम किया जरा थोड़ा नहीं खाना एक दिन दो-चार ग्रास... थोड़ा दान करना। एकाध किसी व्यक्ति को जिमा देना। लो, हो गये हमारे षट्कर्म। यह षट्कर्म तो अशुद्ध है। शुभभाव होवे तो भी अशुद्ध है। समझ में आया? यह भी आगे कहा है, हों!

षट्कर्म के शुद्ध-अशुद्ध दो भाग किये हैं तारणस्वामी ने। तारणस्वामी ने शुद्ध और अशुद्ध ऐसे षट्कर्म के दो भाग किये हैं। जितना शुभभाव आता है, उतना अशुद्ध कर्म है और अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता का स्वाध्याय आदि करना, वह शुद्ध षट्कर्म है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! परन्तु इस निश्चय के बिना व्यवहार होता नहीं। यह कल आया था न? जलगालन में नहीं आया था? ... पहले सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् वह क्रिया जलछानन आदि के शुभराग को व्यवहार कहा जाता है। पहले व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसी जैनदर्शन में श्रद्धा नहीं है। अभी बहुत लोग कहते हैं न? देखो न, कल भी आया ऐसा करो... ऐसा करो... व्यवहार साधन करो, कुछ क्रिया करो, कुछ क्रिया करो, वरना निष्फल जायेगा। ऐसा उपदेश देते हैं। क्या क्रिया तेरी? अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण की जो परिणति की क्रिया चले, वह क्रिया नहीं? क्या राग की क्रिया और देह की क्रिया में अन्तर पड़े तो क्रिया तुझे दिखती है? समझ में आया?

भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर में रुचि में अनन्त गुण की धारा बहती है, पर्याय, वह आत्मा की क्रिया और मोक्ष का मार्ग है। बाहर में कहाँ क्रिया रहती है? वह बाहर की एक प्रतिमा, दो प्रतिमा, चार प्रतिमा। प्रतिमा कहीं सहज आती है या हठ से आती है? दो प्रतिमा ली, दो। क्या प्रतिमा है? प्रतिज्ञा ली कि स्वरूप में अभी नहीं जाना। समझ में आया? तुझे स्वरूप की भावना हो तो तेरी भूमिका की तुझे खबर हो कि मेरी भूमिका की क्या मर्यादा है? मेरे पुरुषार्थ की गति का वेग कितना चलता है? उसकी तो इसे खबर होनी चाहिए। खबर तो नहीं। हठ से ले लिया। इसका अर्थ कि प्रतिज्ञा ली, अन्दर स्वस्वभाव क्या है, उसमें जाना नहीं। समझ में आया? वह भी क्षुल्लक हुए थे न तुम्हारे? कहो, देखो! पीछे भी ५४० में है।

सुधं जिनेहि उत्तं, असुधं संसार सरनि विरोदयं।
सुधं परमानंदं, सुध सहावं च निम्मलं सुधं॥५४०॥

इसे स्वाध्याय कहते हैं। '**जिनेहि उत्तं**' देखो, ऐसा कहा है। ओहोहो! बोधपाहुड है न एक अष्टपाहुड में। कुन्दकुन्दाचार्य का बोधपाहुड है। तो उसमें ११ बोल। ग्यारह बोल हैं न? ग्यारह बोल सब निश्चय के लिये हैं। प्रतिमा, जिन, मुनि, चैत्य... समझ में

आया ? चैतावास सब आत्मा, सब आत्मा। बोधपाहुड में लिया है कि हमारा आत्मा ही मुनि, भावलिंगी सन्त वही चैत्य है। भावलिंगी मुनि, वही जिनवर की प्रतिमा-मूर्ति है। सेठी! हमारा आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति की ओर झुक गया है, तो कहते हैं कि हम ही भगवान की मूर्ति हैं। भगवान की मूर्ति आत्मा है। समझ में आया ? बाहर से, उपचार से, व्यवहार से निमित्त है, परन्तु यह समझे बिना तेरे निमित्त का व्यवहार भी सच्चा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... है न परन्तु स्वयं। वीतरागस्वरूप की दृष्टि बिना, चैतन्यमूर्ति हुए बिना कहाँ से आयेगा ? यह स्वाध्याय की बात हुई। कहाँ आया ? ज्ञानसमुच्चयसार है। उसमें स्वाध्याय आयी न ? सत् की व्याख्या तो आ गयी। और एक है ४९ पृष्ठ सत् की आँख। देखो! सच्ची आँख। ४९ पृष्ठ पर है। यह ९२ गाथा है, ९२। ९ और २। यह (जड़) आँख नहीं।

न्यानं च दर्सनं सुधं, न्यानं चरन संजुतं।
न्यानं सह तपं सुधं, न्यानं केवल लोचनं॥९२॥

९२ गाथा है न, ९२। है या नहीं ? ९२। ९२। ९० और २। **'न्यानं च दर्सनं सुधं'** क्या कहते हैं ? **निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान हैं।** अपनी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वही ज्ञान है और सम्यग्ज्ञानसहित चारित्र शुद्ध सम्यक्चारित्र है। ऐसे सम्यग्ज्ञानसहित जो शुद्ध (स्वरूप में) रमणता, वह चारित्र है। **सम्यग्ज्ञानसहित तप शुद्ध है।** सम्यग्ज्ञान हो तो तब इच्छा का निरोध होकर आनन्द का अनुभव होता है, वह तप शुद्ध है। वरना तो भूखों मरता है। लंघन है। उसमें कुछ लाभ नहीं। यह सबमें लिया है। **'न्यानं च दर्सनं सुधं'** ज्ञान भी निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञान है। और ज्ञान के साथ तप होता है, अन्तर आनन्द का अनुभव, वह तप है।

'न्यानं केवल लोचनं' आत्मज्ञान ही केवल आत्मा की सच्ची आँख है। है ? वह आँख है। यह आँख नहीं, विकल्प नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य का भान अन्तर ज्ञान करना, वही सच्ची आँख है। उस आँख बिना यह आँख हो तो भी उसे अन्ध कहा जाता है।

समझ में आया? मिथ्याज्ञानी जीव को सच्ची आँख हो तो भी अन्ध कहा जाता है और शरीर की आँख में अन्ध हो तो भी आत्मज्ञान का लोचन हो तो उसे सच्चा लोचन कहते हैं। आहाहा!

नरक योनि में तो बहुत दु:ख है। आँख भी सुलग जाती है। आँख भी सुलग जाती है। अग्नि में डालते हैं न परमाधामी? तो सुलग जाती है। अन्दर आँख है। श्रेणिक राजा पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले हैं। अन्दर में जरा अग्नि की पीड़ा से ऐसे आँख भी जीर्ण हो जाती है, रस होकर नाश हो जाती है। अन्दर आत्मज्ञान का लोचन खिल गया है तो देखते हैं। और ग्यारह अंग पढ़नेवाला और नौ पूर्व पढ़नेवाला मिथ्याचारित्र और मिथ्या क्रिया करनेवाला, उसे अन्तर का आत्मज्ञान नहीं तो उसे अन्ध कहा जाता है।

सच्चा ज्ञाननेत्र यह आया न अपने? चक्खु। प्रवचनसार। लो! प्रवचनसार में आया है। आगम चक्खु साहु। मुनि को अन्तर की... आगम शब्द से शास्त्र नहीं, हों! अन्तर में भावआगम। भावश्रुतज्ञान की आँख। प्रवचनसार में लिया है। साधु को भाव—आँख है। केवली को सर्वचक्षु है। सर्वज्ञ परमात्मा असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य खिल गये हैं तो उन्हें सर्वचक्षु कहा जाता है। बाकी स्वर्ग के देव भी इन्द्रिय चक्षुवाले हैं और भावश्रुतज्ञानवाले को भावचक्षु कहा जाता है। वह आँखवाला है, बाकी आँखवाले हैं नहीं। कहो, समझ में आया? यह सब इसमें लिया है, हों! '**व्रिथा भवेत्**' देखो, यह ९४ में देखो।

अनेय स्त्रुत जानाति, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
अनेय कस्ट कर्तव्यं, न्यानहीतो व्रिथा भवेत्॥९४॥

है ९४? क्या कहते हैं? **जो कोई आत्मज्ञान से शून्य है, वह यदि बहुत से शास्त्रों को जानता है।** है न? **'स्त्रुत जानाति' 'अनेकधा व्रत तप क्रिया' अनेक प्रकार व्रत, तप, व आचरण पालके... 'अनेय कस्ट कर्तव्यं' बहुत कष्ट सहता है तो भी वह सब... 'व्रिथा भवेत्' निरर्थक चला जाता है, मोक्षसाधक नहीं होता है।** समझ में आया? अपना सम्यग्ज्ञान-दर्शन परमात्मस्वरूप के भान बिना तेरे व्रत, शास्त्र वाँचना

और तेरी आचरण क्रिया सब व्यर्थ है। अज्ञानरूपी पाडा सब खा जाता है। अब यह कहे वह नहीं। बाहर की क्रिया कुछ हो, प्रतिमा हो, ऐसा खाये, ऐसा पीवे, ऐसा करे, वैसा करे तब तो उसे क्रिया गिनने में आता है। यहाँ कहते हैं कि उस क्रिया को हम क्रिया नहीं कहते। कहो, समझ में आया? ६४ हुई न?

६५-६५। ६५वीं चली। क्या कहा? ६५ में क्या कहा? कि **परमात्मा के भावों में अपूर्व अर्थात् उत्तम व शुद्ध प्रज्ञा या भेदविज्ञान है, इसी से उत्कृष्ट केवलज्ञान का प्रकाश हुआ है। परमात्मा परम शुद्ध है, शुद्ध ध्यान के समान है।** अपना ध्यान, वह भी आत्मा है, ऐसा कहते हैं। ध्यान में और आत्मा में कुछ अन्तर नहीं है। अन्तर धर्मध्यान, शुक्लध्यान, एकाकार स्वभाव को कहते हैं। यह ६५ गाथा में आया।

अब यह प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा, यह बताते हैं। भाई! शास्त्र में प्रत्याख्यान पूर्व में चला है न, चौदह पूर्व में? उसमें क्या है? प्रत्याख्यान क्या है? प्रत्याख्यान, त्याग। बहुत सरस बात की है, देखो!

प्रत्याष्यानं च पूर्वं च, परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।
प्रत्याष्यानं ममलं सुधं, कर्मं खिपति बुधै जनैः ॥६६॥

प्रत्याख्यान नाम का चौदह पूर्व में एक पूर्व है। तो उस पूर्व में जिनेन्द्र ने क्या कहा है? **प्रत्याख्यान नामा पूर्व में परवस्तु के त्याग का वर्णन है।** परवस्तु के त्याग का वर्णन है। **'परोष्यं प्रत्यष्यं' यह त्याग परोक्ष व प्रत्यक्ष दो प्रकार का है,...** देखो, राग की मन्दता होकर अशुभराग छूटे, वह परोक्ष त्याग है और अपने स्वभाव में रागरहित स्थिरता, वह प्रत्यक्ष त्याग है। समझ में आया? यह और त्याग कैसा? है? देखो, प्रत्यक्ष अर्थात् निश्चय और परोक्ष अर्थात् व्यवहार। अपने स्वरूप में विकल्प पुण्य-पाप की वृत्ति से रहित ज्ञान में जम जाना।

यह ३४वीं गाथा में आता है न, समयसार (में)। प्रत्याख्यान किसे कहते हैं? कि ज्ञानस्वरूप ज्ञान में जम जाये, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। आत्मा राग का त्याग करता है, ऐसा भी आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। राग का त्याग करना, ऐसा आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। वह तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है, वह ज्ञान में जम जाता है, वही प्रत्याख्यान है।

वह निश्चय त्याग है और निश्चय प्रत्याख्यान है। और व्यवहार है, वह निश्चय हो तो साथ में व्यवहार, व्यवहार त्याग, व्यवहार प्रत्याख्यान, मुनि ... चार आहार का त्यागादि करता है। ऐसा विकल्प शुभराग होता है, परन्तु '**प्रत्याष्यानं ममलं सुधं**' बात यह है। यह **प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है।** यह व्यवहार विकल्प व्यवहार प्रत्याख्यान आया, वह शुद्ध नहीं। देखो! निश्चय-व्यवहार की बात। दोनों की बात की और एक का फल बतायेंगे। उसकी बात नहीं (करे)। भले दो प्रकार का प्रत्याख्यान कहा परन्तु फल तो एक निश्चय प्रत्याख्यान से ही मोक्ष होता है। व्यवहार प्रत्याख्यान का फल क्या है? बन्ध है। यह तो यहाँ बताया नहीं। भगवान ने ऐसा कहा। भगवान ने तो मोक्ष का मार्ग निश्चय प्रत्याख्यान एक बात, उसका फल मोक्ष है। समझ में आया?

देखो, '**प्रत्याष्यानं ममलं सुधं**' जो स्वरूप में स्थिरता होती है आनन्द और शान्ति, चारित्र, वह तो मलरहित है और शुद्ध है। अस्ति-नास्ति की है। मलरहित है और शुद्ध अस्ति की है। मल है नहीं और शुद्ध है। '**कर्मं खिपति बुधै जनैः' यह बुद्धिमानों के कर्मों का क्षय करता है।** इस प्रकार कर्म का क्षय होता है, बाकी व्यवहार तप से... निश्चय सम्यग्दृष्टि को निश्चय प्रत्याख्यानवाले को व्यवहार प्रत्याख्यान से कर्म खिरते नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने स्वरूप की स्थिरतारूप चारित्र होता है, उससे कर्म खिरते हैं, इसके अतिरिक्त खिरते नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)